DRAVYASANGRAH

आचार्य नेमिचन्द्र विरचित

द्रव्यसंग्रह

(प्राकृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)

संकलन एवम दोहा लेखन

जैन हेमंत लोढ़ा

द्रव्यसंग्रह

संकलन एवम दोहा लेखन
जैन हेमंत लोढ़ा

© Copyright All rights reserved It would be my pleasure to give permission to reproduce or transmit any part of the book, in any form or by any means.

Author

Hemant Lodha
Mobile: 9325536999
Email: lodhah@gmail.com

Social Media

https://www.facebook.com/lodhah

https://www.linkedin.com/in/hemantclodha/

https://www.instagram.com/hemantlodha/

Published by

Self Published
ISBN: ----------

भूमिका

द्रव्यसङ्ग्रह जैन दर्शन के मूल तत्त्वों को अत्यन्त संक्षिप्त, सुबोध और सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने वाला एक अनुपम ग्रन्थ है। इसकी रचना ९-१०वीं शताब्दी के मध्य महान आचार्य आचार्य नेमिचंद्र द्वारा सौरसेनी प्राकृत भाषा में की गई। मात्र ५८ गाथाओं में समूचे तत्त्वज्ञान को समेट लेना इस ग्रन्थ की असाधारण विशेषता है।

द्रव्यसङ्ग्रह में जैन दर्शन के छह द्रव्यों–जीव, पुद्गल, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश और काल–का क्रमबद्ध तथा तर्कसंगत विवेचन किया गया है। यह विवेचन केवल सैद्धान्तिक नहीं है, बल्कि साधक को आत्मचिन्तन और आत्मानुभूति की दिशा में अग्रसर करने वाला है। ग्रन्थ की भाषा संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त गहन है, जिससे यह प्रारम्भिक अध्येता से लेकर गम्भीर साधक तक–सभी के लिए उपयोगी बन जाता है।

इस ग्रन्थ की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें व्यवहार नय और निश्चय नय–दोनों दृष्टियों से कथन किया गया है। व्यवहार नय से जहाँ जगत् में आत्मा के व्यवहारिक स्वरूप को समझाया गया है, वहीं निश्चय नय से आत्मा के शुद्ध, निर्विकार और स्वभावगत रूप का साक्षात्कार कराया गया है। इसी संतुलन के कारण द्रव्यसङ्ग्रह दर्शन और साधना–दोनों का सेतु बनता है।

वस्तुतः द्रव्यसङ्ग्रह केवल एक दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, बल्कि आत्मशुद्धि का पथप्रदर्शक है। यह पाठक को यह बोध कराता है कि बन्धन और मोक्ष बाह्य परिस्थितियों पर नहीं, बल्कि आत्मा के अपने

परिणामों पर निर्भर हैं। इसी कारण यह ग्रन्थ जैन शिक्षा-परम्परा में आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना अपनी रचना के समय था।

यह पुस्तक-पाठक को जैन तत्त्वज्ञान की मूलभूमि से परिचित कराने के साथ-साथ आत्मदृष्टि को परिष्कृत करने का एक विनम्र प्रयास है। आशा है कि यह भूमिका आपको द्रव्यसङ्ग्रह के गहन अध्ययन और मनन के लिए प्रेरित करेगी।

Introduction

Dravyasaṅgraha is a unique work that presents the fundamental principles of Jain philosophy in an extremely concise, clear, and profound manner. It was composed in the 9th–10th century by the great Ācārya Nemichandra Siddhanta Chakravarti in the Śaurasenī Prakrit language. Encompassing the entirety of Jain metaphysics in just 58 verses (gāthās) is the extraordinary distinction of this text.

The *Dravyasaṅgraha* systematically and logically expounds the six substances (dravya) of Jain philosophy—soul (jīva), matter (pudgala), the medium of motion (dharma dravya), the medium of rest (adharma dravya), space (ākāśa), and time (kāla). This exposition is not merely theoretical; rather, it guides the seeker toward self-reflection and self-realization. Though brief in language, the text is remarkably profound, making it valuable for beginners as well as serious spiritual aspirants.

One of the principal features of this work is its presentation from both the empirical (vyavahāra naya) and the ultimate (niścaya naya) standpoints. From the empirical perspective, it explains the practical condition of the soul in the worldly context; from the ultimate standpoint, it reveals the soul's pure, untainted, and intrinsic nature. Owing to this balance, the *Dravyasaṅgraha* serves as a bridge between philosophy and spiritual practice.

In essence, the *Dravyasaṅgraha* is not merely a philosophical treatise, but a guide to self-purification. It makes the reader aware that bondage and liberation do not depend on external circumstances, but on the soul's own modifications and states. For this reason, the text remains as relevant today in the Jain educational tradition as it was at the time of its composition.

This book is a humble effort to acquaint readers with the foundational principles of Jain philosophy while refining their spiritual insight. It is hoped that this introduction will inspire you toward a deeper study and contemplation of the *Dravyasaṅgraha*.

मेरी लेखनी से

जैन आगम और आचार्य-परम्परा का अध्ययन करते हुए जिन ग्रन्थों ने मुझे बार-बार आत्मचिन्तन के लिए प्रेरित किया है, उनमें द्रव्यसङ्ग्रह का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। आकार में छोटा होते हुए भी यह ग्रन्थ अर्थ में विराट है। मात्र ५८ गाथाओं में आचार्य नेमिचंद्र ने समूचे जैन तत्त्वज्ञान का ऐसा सार प्रस्तुत किया है, जो जितना पढ़ा जाए, उतना ही गहराता जाता है।

मेरे अनुभव में द्रव्यसङ्ग्रह का सबसे बड़ा योगदान यह है कि यह हमें बाहर से भीतर की यात्रा पर ले जाता है। जीव और अजीव, बन्ध और मोक्ष, पुण्य और पाप–ये सभी विषय यहाँ केवल बौद्धिक चर्चा नहीं रह जाते, बल्कि साधक के अपने जीवन से जुड़ जाते हैं। व्यवहार नय और निश्चय नय के माध्यम से यह ग्रन्थ हमें यह स्पष्ट बोध कराता है कि संसार में रहते हुए भी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को कैसे पहचाना जाए।

मैं मानता हूँ कि आज के समय में, जब मनुष्य बाह्य उपलब्धियों में उलझा हुआ है, द्रव्यसङ्ग्रह जैसे ग्रन्थ की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। यह हमें याद दिलाता है कि वास्तविक परिवर्तन बाहर नहीं, भीतर घटित होता है; और मुक्ति का मार्ग किसी बाह्य साधन से नहीं, आत्मा के सही बोध से प्रशस्त होता है।

इस पुस्तक के माध्यम से मेरा विनम्र प्रयास रहा है कि द्रव्यसङ्ग्रह के मूल भाव को यथासम्भव सरल, स्पष्ट और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाए, ताकि जिज्ञासु पाठक, विद्यार्थी और साधक–सभी इससे लाभान्वित हो सकें। मेरा मूल योगदान इस कृति में दोहा-लेखन के

रूप में है। शास्त्रीय विषय की गम्भीरता के कारण यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो, तो उसके लिए मैं पूर्व में ही क्षमायाचना करता हूँ।

यदि यह ग्रन्थ किसी पाठक को आत्मचिन्तन के एक भी क्षण की ओर ले जाए, तो मैं अपने प्रयास को सार्थक मानूँगा।

आशा है कि यह कृति पाठकों के अध्ययन, मनन और आत्मिक यात्रा में सहायक सिद्ध होगी।

हेमन्त लोढा, नागपुर, फेब्रुअरी २०२६

From My Pen

While studying the Jain Āgamas and the lineage of Ācāryas, among the texts that have repeatedly inspired me toward self-reflection, Dravyasaṅgraha holds a uniquely distinguished place. Though small in size, it is vast in meaning. In just 58 verses, Ācārya Nemichandra Siddhanta Chakravarti presented the essence of the entire Jain philosophy in such a way that the more one studies it, the deeper it becomes.

In my experience, the greatest contribution of the *Dravyasaṅgraha* is that it leads us on a journey from the outer world to the inner self. Concepts such as soul and non-soul, bondage and liberation, merit and demerit—do not remain mere intellectual discussions here; rather, they become intimately connected with the seeker's own life. Through the perspectives of the empirical (vyavahāra naya) and the ultimate (niścaya naya), this text clearly enables us to understand how to recognize the pure nature of the soul even while living in the world.

I believe that in today's time, when human beings are entangled in external achievements, the relevance of a text like the *Dravyasaṅgraha* has increased even further. It reminds us that real transformation does not occur outside

but within, and that the path to liberation is not paved by external means, but by the right understanding of the soul.

Through this book, my humble effort has been to present the essential spirit of the *Dravyasaṅgraha* in a manner that is as simple, clear, and authentic as possible, so that inquisitive readers, students, and spiritual aspirants may all benefit from it. My primary contribution to this work is in the form of composing couplets (dohās). Given the seriousness of the subject, if any errors have remained, I sincerely seek forgiveness in advance.

If this work leads even a single reader toward a moment of self-reflection, I shall consider my effort successful.
I hope that this book will prove helpful in the readers' study, contemplation, and spiritual journey.

Hemant Lodha, February 2026

मंगलाचरणः

जीवाजीवं दव्वं जिनवरसेणेण जेण णिण्णियं।

देविंद-देविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा॥१॥

जीव व अजीव भेद का, जिनवर दिया विचार।

इन्द्र देव नमन करे, वंदन बारम्बार ॥१॥

जिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान ने जीव और अजीव द्रव्यों का निरूपण किया है, देवों और इन्द्रों द्वारा वंदित उन भगवान को मैं सदा श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ।

I always bow with reverence to that Supreme Tīrthaṅkara Ṛṣabhadeva, who expounded the nature of soul and non-soul substances, and who is revered by gods and Indras.

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।

भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

जीव कर्ता उपयोगमय, अमूर्त, तन अनुसार।

संसार में भोक्ता वही, सिद्ध चले ऊर्ध्वधार ॥२॥

जो उपयोगस्वरूप है, अमूर्त है, कर्ता है और अपने शरीर के परि माण का है—
वह जीव है। वही जीव संसार में भोक्ता होता है और सिद्ध अव स्था में जाकर लोक के शीर्ष (सिद्धशिला) में स्थित होता है।

The soul is characterized by consciousness (upayoga), is formless, a doer, and of the size of its own body. That same soul is the enjoyer in worldly existence and, upon becoming liberated, abides at the summit of the universe.

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउ आणपाणोय।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

प्राण आयु इन्द्रिय बल, जीव श्वासोच्छास।
तीन काल व्यवहार से, निश्चय चेतन पास ॥३॥

तीनों कालों में चार प्राण, इन्द्रिय-बल, आयु और श्वासोच्छास—
व्यवहार नय से वही जीव है;
और निश्चय नय से जिसकी स्वरूप चेतना है, वही जीव है।

In all three times, that which possesses the four vitalities, the strength of the senses, lifespan, and respiration is the soul from the standpoint of the empirical (vyavahāra) view; but from the standpoint of the real (niścaya) view, the soul is that whose essence is consciousness.

उपओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥

ज्ञान और दर्शन भी, उपयोग दो प्रकार।
चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन, केवल दर्शन चार ॥४॥

उपयोग दो प्रकार का है—ज्ञान और दर्शन।
दर्शन चार प्रकार का है—
चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन।

Upayoga is of two kinds—knowledge and perception.

Perception is of four kinds: ocular perception, non-ocular perception, clairvoyant perception, and omniscient perception.

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुद ओही अणाणणाणणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च ॥५॥

ज्ञान और अज्ञान से, मति श्रुत अवधि जान।
मनःपर्यय केवल शुद्ध है, परोक्ष व प्रत्यक्ष ज्ञान ॥५॥

ज्ञान आठ प्रकार का होता है। मति, श्रुत और अवधि—
ये तीन ज्ञान तथा अज्ञान—दोनों रूपों में होते हैं;
मनःपर्यय और केवल—
ये दो शुद्ध ज्ञान हैं।ज्ञान के प्रत्यक्ष (अवधि, मनःपर्यय व केवल) औ
र परोक्ष (मति व श्रुत)—ऐसे भी भेद माने गए हैं।

Knowledge is of eight kinds.

Mati (sensory knowledge), śruta (scriptural knowledge), and avadhi (clairvoyant knowledge) exist in two forms—knowledge and non-knowledge.

Manaḥparyaya (telepathic knowledge) and kevala (omniscient knowledge) are pure forms of knowledge.

Knowledge is also classified as direct (avadhi, manaḥparyaya, and kevala) and indirect (mati and śruta).

अट्ठचदुणाण दंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।

ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

आठ ज्ञान व चार दर्शन, व्यवहार लक्षण मान।

निश्चय नय से जीव का, शुद्ध है दर्शन ज्ञान ॥६॥

आठ ज्ञान और चार दर्शन—
इन्हें जीव का सामान्य लक्षण कहा गया है।

व्यवहार नय से यह कहा जाता है, और निश्चय नय से दर्शन और ज्ञान शुद्ध हैं।

Eight kinds of knowledge and four kinds of perception are said to be the general characteristics of the soul.

From the empirical (vyavahāra) standpoint this is stated, while from the pure (niścaya) standpoint knowledge and perception are pure.

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥

वर्ण व रस पाँच गंध दो, स्पर्श आठ प्रकार।
व्यवहार से मूर्त बने, निश्चय अमूर्त विचार ॥७॥

निश्चय नय से जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ प्रकार के स्पर्श नहीं होते, इसलिए वह अमूर्त है;
पर व्यवहार नय से कर्म-बंधन के कारण वह मूर्त कहा जाता है।

From the standpoint of the real (niścaya) view, the soul does not possess the five colours, five tastes, two smells, and eight kinds of touch; therefore, it is formless.

However, from the empirical (vyavahāra) standpoint, due to bondage with karma, the soul is considered to be embodied (material).

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।

चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

कर्ता कर्म व पुद्गल का, व्यवहार से मान।

राग द्वेष करता वही, शुद्ध दर्शन ज्ञान ॥८॥

जीव व्यवहार नय से ज्ञानावरण आदि पुद्गल कर्मों का तथा औदा रिक शरीर आदि नोकर्मों का कर्ता है।

अशुद्ध निश्चय नय से वह राग–द्वेष आदि भावकर्मों का कर्ता है;

और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध दर्शन, शुद्ध ज्ञान आदि शुद्ध भावों का कर्ता है।

From the empirical (vyavahāra) standpoint, the soul is the doer of material karmas such as knowledge-obscuring karma and also of quasi-karmas like the physical (audārika) body.From the impure real (aśuddha niścaya) standpoint, it is the doer of psychical karmas such as attachment and aversion. From the pure real (śuddha niścaya) standpoint, the soul is the doer of pure states such as pure perception and pure knowledge.

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।

आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

सुख दुख पुद्गल कर्म का, फल भोगे व्यवहार।

चेतन भाव का भोक्ता, निश्चय नय का विचार ॥९॥

जीव व्यवहार नय से सुख–
दुःख रूप पुद्गल कर्मों के फल को भोगता है।

निश्चय नय से वह अपने ही चेतन भावों का भोक्ता है।

From the empirical (vyavahāra) standpoint, the soul experiences pleasure and pain, which are the results of material karmas.

From the real (niścaya) standpoint, the soul experiences only its own states of consciousness.

अणुगुरु देहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।

असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

व्यवहार से है आत्मा, स्वरुप संकोच विस्तार।

निश्चय नय से जीव है, समस्त लोक आकार ॥१०॥

व्यवहार नय से आत्मा संकोच–
विस्तार स्वभाव वाली है; समुद्घात रहित अवस्था में शरीर-
नाम कर्म के उदय से छोटे–
बड़े शरीर के प्रमाण का आकार धारण करती है।
परन्तु निश्चय नय से आत्मा असंख्यात प्रदेशी है और लोकाकाश प्रमाण है।

From the empirical (vyavahāra) standpoint, the soul possesses the nature of contraction and expansion; in the non-emergent (asamudghāta) state, due to the rise of body-determining karma, it assumes the size of the body—small or large. However, from the real (niścaya) standpoint, the soul consists of innumerable space-points and is coextensive with the universe.

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।

विगतिगचदुंपचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

भू जल अग्नि वायु वनस्पति, एकेन्द्रि स्थिर जीव।

दो से पाँच इन्द्रियाँ, शंखादि त्रस सजीव ॥११॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति—
ये अनेक प्रकार के स्थावर जीव हैं,
और ये सभी एक इन्द्रिय (स्पर्श इन्द्रिय) वाले होते हैं। दो, तीन,

चार और पाँच इन्द्रिय वाले जीव—जैसे शंख आदि—
त्रस जीव कहलाते हैं।

Earth, water, fire, air, and vegetation constitute various kinds of immobile (sthāvara) living beings, all of which possess only one sense, namely touch. Living beings endowed with two, three, four, and five senses—such as conch-shell beings and others—are mobile (trasa) beings.

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादर सुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी–असंज्ञी, शेष असंज्ञी जान।
सूक्ष्म बादर एकेन्द्रिय, पूर्ण व अपूर्ण मान ॥१२॥

पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी—दो प्रकार के होते हैं।
एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के सभी जीव असंज्ञी होते हैं।
एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म—दो प्रकार के होते हैं,
और ये सभी पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक भी होते हैं।

Five-sensed living beings are of two kinds—sentient (saṁjñī) and non-sentient (asaṁjñī). All living beings with one to four senses are non-sentient. One-sensed beings are of two kinds—gross (bādara) and subtle (sūkṣma), and all living beings are classified as either complete (paryāpta) or incomplete (aparyāpta).

मग्गणगुणाठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

व्यवहार से चौदह हैं, मार्गणा गुणस्थान।
संसारी के भेद हैं, निश्चय शुद्ध ही जान ॥१३॥

मार्गणाओं और गुणस्थानों की अपेक्षा से संसारी जीव
व्यवहार (अशुद्ध) नय से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं।
किन्तु निश्चय (शुद्ध) नय से सभी जीव शुद्ध ही जाने जाते हैं।

From the standpoint of empirical (impure) viewpoints,
worldly souls are understood to be of fourteen kinds,
based on the classifications of marganās and guṇasthānas.
However, from the standpoint of the pure (niścaya) view,
all souls are indeed pure.

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥

कर्मरहित अष्ट गुणयुक्त, चरम देह से न्यून।
नित्य उत्पाद व्यय सहित, ऊर्ध्वलोक सिद्ध सून ॥१४॥

सिद्ध भगवान आठ कर्मों से रहित और आठ गुणों से युक्त होते हैं । वे अंतिम शरीर से कुछ न्यून होते हैं,
ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित, नित्य हैं
और उत्पाद–व्यय से संयुक्त रहते हैं।

The Siddhas are free from the eight karmas and endowed with eight intrinsic qualities. They are slightly less than the size of the last body, by nature they move upward and dwell at the summit of the universe; they are eternal and are associated with origination and cessation.

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

पुद्गल धर्म अधर्म गगन, अजीव द्रव्य काल।
केवल पुद्गल मूर्तिक है, शेष अमूर्तिक हाल ॥१५॥

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—
इनको अजीव द्रव्य जानना चाहिए।
इनमें रूप आदि गुणों से युक्त पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है,
शेष धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

Matter (pudgala), the media of motion (dharma), rest (adharma), space (ākāśa), and time (kāla) are to be known as non-living substances. Among these, matter alone, being endowed with qualities such as form, is material (corporeal); the remaining substances are formless (incorporeal).

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।

उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

पुद्गल की पर्याय है, शब्द बंध आकार

सूक्ष्म स्थूल प्रकाश उष्मा, छाया तम प्रकार ॥१६॥

शब्द, बंध, सूक्ष्म और स्थूल, संस्थान (आकार), भेद, अन्धकार, छाया, उद्योत और आतप—ये सभी पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

Sound, aggregation (bondage), subtle and gross forms, shape, differentiation, darkness, shadow, radiance (light) and heat (sunshine) are all modes of the material substance (pudgala).

गइ परिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।

तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

पुद्गल व जीव गमन में, धर्म द्रव्य सहकार।

ज्यूँ जल में मछली चले, अचल करे इंकार ॥१७॥

गमन करते हुए पुद्गल और जीवों के लिए जो सहकारी निमित्त हो ता है, उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे जल मछलियों के गमन में सहा यक होता है, वैसे ही धर्म द्रव्य है; पर जो ठहरे हुए हैं, उन्हें वह क भी नहीं चलाता।

Dharma (the medium of motion) is the auxiliary cause for the movement of matter and souls. Just as water assists fish in moving, so too is dharma; however, it never causes movement in those that are at rest.

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।

छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

पुद्गल व जीव ठहरना, अधर्म द्रव्य सहकार।

ज्यूँ पथिक छाया मिले, चले, करे न इंकार ॥१८॥

ठहरते हुए पुद्गल और जीवों के लिए जो ठहरने में सहकारी निमित्त होता है, उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जिस प्रकार पथिक के ठहरने में छाया सहायक होती है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य है;

परन्तु जो गमन कर रहे हैं, उन्हें वह कभी नहीं ठहराता।

Adharma (the medium of rest) is the auxiliary cause for the state of rest of matter and souls. Just as shade assists a traveler in resting, so too does adharma; however, it never causes rest in those who are moving.

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।

जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

स्थान दे सब द्रव्य को, काम द्रव्य आकाश।

लोक व अलोक भेद दो, जिनवाणी विश्वास ॥१९॥

जीव आदि समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में जो समर्थ है, उसे आकाश द्रव्य जानना चाहिए। वह लोकाकाश और अलोकाकाश— इन दो भेदों से जाना जाता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

That which is capable of providing space to living beings and other substances is to be known as ākāśa (space). It is of two kinds—lokākāśa and alokākāśa—as taught by the Jinas.

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।

आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

जीव, पुद्गल,धर्म अधर्म, काल द्रव्य का लोक।

लोक बाहर द्रव्य नहीं, लोक बाहर अलोक ॥२०॥

जितने आकाश प्रदेशों में धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य, पुद्गल द्रव्य और जीव द्रव्य विद्यमान हैं, उसी आकाश को लोकाकाश क हते हैं; उस लोकाकाश के बाहर जो आकाश है, वह अलोकाकाश कहलाता है।

All the space in which the substances—dharma (medium of motion), adharma (medium of rest), time, matter, and soul—exist is called lokākāśa. Beyond this region lies alokākāśa, the infinite space where these substances are not present.

दव्वपकिवट्टरूवो जो सो कालो हवेई ववहारो।

परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

द्रव्यों के परिवर्तन में जो सहायक होता है तथा परिणाम आदि को जिसका लक्षण कहा गया है, वह व्यवहार काल है। परिणमन औ र वर्तना में जिसका हेतुपन लक्षण है, वह निश्चय (परमार्थ) काल है ।

That which assists in the transformation of substances and is characterized by results and changes is known as empirical (vyavahāra) time. That whose defining characteristic is continuity and transformation itself is known as real (niścaya or paramārtha) time.

लोयायासपदेसे, इक्किक्के ज ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू अशंखदव्वाणि ॥२२॥

लोक के हर प्रदेश में, रत्नराशि के समान।
कालाणु है स्थित हुए, द्रव्य असंख्यात जान ॥२२॥

लोकाकाश के प्रत्येक-
प्रत्येक प्रदेश पर, रत्नों की राशि के समान, एक-
एक काल द्रव्य का अणु स्थित है। वे कालाणु निश्चय नय से असं
ख्यात हैं।

In each and every space-point of the universe (lokākāśa), one unit of time is present, like a heap of gems spread throughout. These time-atoms are innumerable from the standpoint of the real (niścaya) view.

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।

उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

जीव व अजीव भेद से, द्रव्य छह कहलाय।

काल द्रव्य को छोड़कर, शेष पंचास्तिकाय ॥२३॥

इस प्रकार जीव और अजीव के भेद से द्रव्य छह कहे गए हैं। इनमें काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों को पंच अस्तिकाय के रूप में जानना चाहिए।

Thus, substances are described as six, classified into living and non-living. Excluding time, the remaining five substances are to be known as the five astikāyas (extended substances).

संति जदो तेणेदे, अत्थित्ति भणन्ति जिणवरा जम्हा।

काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अस्तित्व से अस्ति कहा, बहु प्रदेशी काय।

जिनवाणी से जानिए, उन द्रव्य को अस्तिकाय ॥२४॥

जिन द्रव्यों में अस्तित्व (अस्ति) है, इसलिए जिनेन्द्र भगवान ने उन्हें अस्ति कहा है। और जो शरीर के समान बहु-प्रदेशी (काय) हैं, इस कारण वे अस्तिकाय कहलाते हैं।

Because these substances exist, the Jinas describe them as possessing existence (asti). And since they are extended over many space-points like a body (kāya), they are therefore called astikāyas.

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।

मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

जीव धर्म अधर्म असंख्य, आकाश अनन्त प्रदेश।

संख्य असंख्य अनन्त पुद्गल, काल का एक प्रदेश ॥२५॥

जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश द्रव्य अ नन्त प्रदेशी है।
पुद्गल द्रव्य के प्रदेश तीन प्रकार (संख्यात, आसंख्यात और अनन्त) के होते हैं। काल द्रव्य का केवल एक ही प्रदेश होता है, इसलिए वह काय नहीं कहलाता।

Living substance (jīva) possesses innumerable space-points. The substances of motion (dharma) and rest (adharma) also possess innumerable space-points. Space (ākāśa) possesses infinite space-points. Matter (pudgala) has space-points of three kinds. (numerable, innumerable and infinite). Time (kāla) has only one space-point; therefore, it is not considered an extended substance (kāya).

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

एक प्रदेशी अणु फिर भी, बहु प्रदेश व्यवहार।
स्कंध योग से काय कहा, जिनवाणी आधार ॥२६॥

अणु एक प्रदेशी होते हुए भी, विभिन्न स्कन्धों के प्रदेशों के संयोग से व्यवहार नय से बहु-
प्रदेशी कहा जाता है। इसी कारण सर्वज्ञ देव उसे काय कहते हैं।

Although an atom is of a single space-point, due to its association with the space-points of various aggregates (skandhas), it is spoken of as possessing many space-points from the empirical (vyavahāra) standpoint. Therefore, the Omniscient ones describe it as a kāya.

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।

तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अविभाज्य पुद्गल अणु, आकाश दे निवास।

निश्चय नय से स्थान दे, सकल अणु आवास ॥२७॥

जितना आकाश अविभाज्य पुद्गल के परमाणु द्वारा आच्छादित (घिरा) होता है,

उसे ही प्रदेश जानना चाहिए। वह प्रदेश निश्चय नय से सभी परमा णुओं को स्थान देने में समर्थ होता है।

That portion of space which is occupied by an indivisible atom of matter is to be known as a space-point (pradeśa). From the standpoint of the real (niścaya) view, that space-point is capable of accommodating all atoms.

आसव बंधण संवर, णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।

जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष पुण्य व पाप।

जीव अजीव विशेष अवस्था, संक्षेप जाने आप ॥२८॥

आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष— तथा पुण्य और पाप—
ये सभी जीव और अजीव के विशेष (विकारात्मक अवस्थाएँ) हैं।
इनका भी अब हम संक्षेप में वर्णन करते हैं।

Inflow (āsrava), bondage (bandha), stoppage (saṁvara), dissociation (nirjarā), and liberation (mokṣa), as well as merit (puṇya) and demerit (pāpa), are special states related to the living and non-living substances. These too are now described briefly.

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।

भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

भावास्रव जिन ने कहा, आत्मा के परिणाम।

पुद्गल कर्मों का चिपकना, द्रव्य आस्रव नाम ॥२९॥

आत्मा के जिन परिणामों से कर्म का आगमन होता है, उसे भाव-आस्रव जानना चाहिए। और जो पुद्गल कर्मों का आत्मा में आना है , वह द्रव्य-आस्रव कहलाता है— ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

That state of the soul by which karma flows in, through its own modifications, is known as bhāva-āsrava (psychical inflow). And the actual inflow of material karmas is known as dravya-āsrava (material inflow), as taught by the Jinas.

मिच्छत्ता विरदिपमादजोग कोधादओऽथ विण्णेया।
पणपणपणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मिथ्यात्व अविरति पंच- पंच, प्रमाद पन्द्रह भेद।
तीन योग व कषाय चउ, जिनवर कहे प्रभेद ॥३०॥

भावास्रव के भेद क्रमशः इस प्रकार जाने जाते हैं—
मिथ्यात्व के पाँच भेद, अविरति के पाँच भेद, प्रमाद के पन्द्रह भेद,
योग के तीन भेद और कषाय के चार भेद।

The varieties of bhāva-āsrava are to be known in order as follows— five types of wrong belief (mithyātva), five types of non-restraint (avirati), fifteen types of negligence (pramāda), three types of activity (yoga), and four types of passions (kaṣāya).

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

ज्ञानावरणादि आठ कर्म, द्रव्य आस्रव जान।
भेद कई द्रव्यास्रव के, कहते जिन भगवान ॥३१॥

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल द्रव्य आत्मा में प्रविष्ट होते हैं, उन्हें द्रव्य-आस्रव जानना चाहिए। यह द्रव्य-आस्रव अनेक भेदों वाला है— ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

That material substance which flows in and is fit to become the eight types of karmas—such as knowledge-obscuring karma— is known as dravya-āsrava (material inflow). This dravya-āsrava has many varieties, as taught by the Jinas.

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो।

कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

भावबंध का कारण है, आत्मा चेतन भाव।

कर्म-जीव प्रदेश मिलन, द्रव्यबंध स्वभाव ॥३२॥

आत्मा के चेतन भावों (परिणामों) के कारण जो बंध होता है, वह भावबंध कहलाता है। और कर्म के प्रदेशों तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश कर जाना द्रव्यबंध कहा जाता है।

That bondage which occurs due to the conscious states (modifications) of the soul is known as bhāva-bandha (psychical bondage). And the mutual interpenetration of the space-points of karma and the space points of the soul is called dravya-bandha (material bondage).

पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेस भेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

प्रकृति स्थिति अनुभाग बंध, प्रदेश संग है चार।
प्रकृति प्रदेश योग से, शेष कषाय- विकार ॥३३॥

बंध चार प्रकार का होता है—
प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध। इनमें प्रकृति बंध और प्रदेश बंध का कारण योग है, और स्थिति बंध तथा अनुभाग बंध का कारण कषाय है।

Bondage is of four kinds— nature-bondage (prakṛti), duration-bondage (sthiti), intensity-bondage (anubhāga), and space-point bondage (pradeśa). Among these, nature and space-point bondage arise due to activities (yoga), whereas duration and intensity bondage arise due to passions (kaṣāya).

चेदणापरिणामो जो, कम्मस्सासव णिरोहणे हेदू।

सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥

आस्रव रुके भाव संवर, चेतन का परिणाम।

पुद्गल आस्रव का रुकना, द्रव्य संवर नाम ॥३४॥

चेतना का जो परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने में कारण बनता है,

वही वास्तव में भाव-
संवर कहलाता है। और पुद्गल कर्मों के आस्रव का जो वास्तविक रुकना है, वह द्रव्य-संवर कहा जाता है।

That modification of consciousness which becomes the cause for stopping the inflow of karma is truly known as bhāva-saṁvara (psychical stoppage). And the actual cessation of the inflow of material karmas is known as dravya-saṁvara (material stoppage).

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा पकीसहजओ य।

चारित्तं बहुभेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

भाव संवर के भेद है, व्रत समिति गुप्ति जान।

अनुप्रेक्षा व परिषहजय, बहुविध चरित्र मान ॥३५॥

व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय तथा अनेक भेदों वाला चारित्र—

इन सबको भाव-संवर के विशेष भेद के रूप में जानना चाहिए।

Vows (vrata), carefulness (samiti), restraints (gupti), righteousness (dharma), contemplations (anuprekṣā), conquest of hardships (pariṣahajaya), and the many forms of conduct (cāritra) are to be known as the special kinds of bhāva-saṁvara.

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

कर्म उदय या तपस्या, भाव निर्जरा जान।
कर्म पुद्गल क्षय जब हो, द्रव्य निर्जरा मान ॥३६॥

निर्जरा दो प्रकार की होती है। जिस आत्म-परिणाम के द्वारा उचित समय आने पर कर्म का फल भोग लिया जाता है, या तपस्या के द्वारा कर्म-पुद्गल का क्षय होता है, उस आत्म-परिणाम को भाव-निर्जरा जानना चाहिए। और कर्म-पुद्गलों का जो वास्तविक झड़ना है, वह द्रव्य-निर्जरा कहलाता है।

Nirjarā (shedding of karma) is of two kinds. That modification of the soul by which karmas mature and are experienced at the proper time, or by which karmic matter is destroyed through austerities, is known as bhāva-nirjarā (psychical dissociation). The actual falling away of karmic particles is known as dravya-nirjarā (material dissociation).

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।

णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपिहभावो ॥३७॥

भाव मोक्ष कर्म क्षय से, आत्मा का परिणाम।

कर्म पुद्गल से विमुक्त हो, द्रव्य मोक्ष है नाम ॥३७॥

निश्चय नय से आत्मा का वह परिणाम, जो सभी कर्मों के क्षय का कारण बनता है, उसे भाव-मोक्ष जानना चाहिए। और आत्मा से पुद्गल कर्मों का पूर्णतः अलग हो जाना द्रव्य-मोक्ष कहलाता है।

That modification of the soul which becomes the cause for the destruction of all karmas is known as bhāva-mokṣa (psychical liberation). And the complete separation of karmic matter from the soul is known as dravya-mokṣa (material liberation).

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।

सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

शुभ अशुभ भाव परिणमन, साता वेदन पुण्य।

शुभ आयु-नाम गौत्र उच्च, पाप कर्म है अन्य ॥३८॥

शुभ और अशुभ भावों (परिणामों) से युक्त जीव क्रमशः पुण्य औ र पाप के रूप में परिणत होता है। साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र— ये पुण्य कर्म कहलाते हैं;

इनके अतिरिक्त शेष सभी कर्म-प्रकृतियाँ पाप रूप हैं।

Living beings, associated with auspicious and inauspicious mental states, become the bearers of merit (puṇya) and demerit (pāpa) respectively. Pleasant-feeling karma (sātā-vedanīya), auspicious lifespan (śubha-āyu), auspicious body-determining karma (śubha-nāma), and high status (uccagotra) are classified as merit; all other karmic categories are considered demerit.

सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

दर्शन ज्ञान चरित्र सम्यक्, मोक्षमार्ग व्यवहार।

त्रिरत्नमय शुद्ध आत्मा, मोक्ष हेतु अविकार ॥३९॥

व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र—
ये तीनों मिलकर मोक्ष के कारण माने जाते हैं। और निश्चय नय से
सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमय आत्मा स्वयं ही मोक्ष का कारण है।

From the empirical (vyavahāra) standpoint, right faith, right knowledge, and right conduct together are the causes of liberation. From the real (niścaya) standpoint, the soul itself—endowed with right faith, right knowledge, and right conduct— is the direct cause of liberation.

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।

तम्हा तत्तिय मइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

रत्नत्रय होता नहीं, आत्मा के सिवाय।

रत्नत्रयमय आत्म ही, मोक्ष हेतु उपाय ॥४०॥

आत्मा के अतिरिक्त किसी भी अन्य द्रव्य में रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र) का अस्तित्व नहीं होता। इसलिए रत्नत्रय मय आत्मा ही, निश्चय नय से, मोक्ष का कारण है।

The three jewels—right faith, right knowledge, and right conduct—do not exist in any substance other than the soul. Therefore, from the standpoint of the real (niścaya) view, the soul endowed with the three jewels itself is the cause of liberation.

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।

दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

जीवादि श्रद्धान सम्यक्त्व, आत्मा का स्वभाव।

मिथ्या से मुक्ति मिले, सम्यग्ज्ञान प्रभाव ॥४१॥

जीव आदि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व (सम्यग्दर्श न) है, और यह आत्मा का स्वभाव है। जिस सम्यग्दर्शन के होने प र ज्ञान दुराग्रह, मिथ्या अभिप्राय और विपरीत निश्चय से मुक्त हो जाता है, वही ज्ञान वास्तव में सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

Right belief (samyaktva) is the true faith in the real nature of substances such as the soul; it is an intrinsic nature of the soul. When right belief arises, knowledge becomes free from false notions and wrong insistence, and then that knowledge is truly called right knowledge (samyagjñāna).

संसय विमोह विब्भम, विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।

गहणं सम्मण्णाणं, सायारमणेयभेयं च ॥४२॥

संशय विमोह विभ्रम नहीं, जीव अजीव का ज्ञान।

कई भेद, साकार है, वो ही सम्यग्ज्ञान ॥४२॥

जिस ज्ञान में संशय (doubt), विमोह (भ्रम/मोह) और विभ्रम (विपर्यय/गलत कल्पना) नहीं होते, और जिसमें आत्मा तथा आत्मा से भिन्न पर-पदार्थों के स्वरूप का यथार्थ ग्रहण होता है— वही सम्यग्ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान साकार (विषय-आधारित) होता है और अनेक भेदों वाला होता है।

Right knowledge (samyagjñāna) is the correct cognition of the nature of the self and non-self substances, free from doubt, delusion, and error. It is objective (possessing form/content) and has many varieties.

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

विशेषरुप आकार बिना, अस्तित्व का आभास।
ग्रहण करे सामान्य को, दर्शन का प्रकाश ॥४३॥

विशेष रूप, आकार या आकृति को ग्रहण किए बिना, और भेद किए बिना, केवल सामान्य रूप से पदार्थ की सत्ता (अस्तित्व) का जो ग्रहण होता है— उसी को शास्त्रों में दर्शन कहा गया है।

That cognition in which the substances are apprehended only in a general manner, without grasping their specific forms, shapes, or distinctions, and without differentiating their particular attributes—such cognition is called darśana (perception) in the scriptures.

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा।

जुगवं जम्हा केवलि, णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

ज्ञान से पहले दर्शन हो, अल्पज्ञानी पहचान।

दर्शन ज्ञान युगपत् हो, केवली उसको जान ॥४४॥

छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) जीवों के लिए ज्ञान दर्शन के बाद होता है; उनमें दर्शन और ज्ञान दोनों एक साथ नहीं होते। केवली के लिए दर्शन और ज्ञान युगपत् (एक साथ) होते हैं, क्योंकि उनमें इन दोनों का कालभेद नहीं रहता।

For non-omniscient beings (chadmastha), knowledge arises after perception; perception and knowledge do not occur simultaneously. For an omniscient being (kevalī), perception and knowledge occur simultaneously, as there is no temporal distinction between them.

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अशुभ निवृत्ति शुभ में प्रवृत्त, चारित्र है व्यवहार।
व्रत समिति गुप्ति रुप है, जिनदेव का विचार ॥४५॥

अशुभ से निवृत्ति करना और शुभ में प्रवृत्त होना—
इसे चारित्र जानना चाहिए। यह चारित्र व्यवहार नय से व्रत, समिति और गुप्ति आदि के रूप में जाना जाता है—
ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

From the empirical (vyavahāra) standpoint, withdrawal from inauspicious activities and engagement in auspicious ones is known as conduct (cāritra). This conduct is expressed in the form of vows, carefulness, and restraints, as taught by the Jinas.

बहिरब्भंतर किरिया, रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणंत्तु, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

बाह्य अंतर क्रिया रुके, संसार कारण नाश।
निश्चय सम्यक् चारित्र, जिनवर का प्रकाश ॥४६॥

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के बाद, संसार के कारणों के नाश के लिए
मन, वचन और काय की बाह्य तथा आन्तरिक—
शुभ और अशुभ—
सभी क्रियाओं का निरोध जो किया जाता है, उसी को निश्चय नय
से परम सम्यक् चारित्र कहा गया है—
ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

After the attainment of right knowledge, the restraint of all external and internal activities of mind, speech, and body— both auspicious and inauspicious— undertaken for the destruction of the causes of worldly existence, is called supreme right conduct (parama samyag-cāritra) from the real (niścaya) standpoint, as taught by the Jinas.

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।

तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

मुक्ति हेतु नित्य नियम से, मुनि करता है ध्यान।

निश्चय व्यवहार सिद्ध हों, प्रयत्नचित्त पहचान ॥४७॥

ध्यान के द्वारा मुनि निश्चय और व्यवहार—दोनों प्रकार के मोक्ष-हेतु को नियम से प्राप्त करता है। इसलिए मोक्ष की इच्छा रखने वाले को प्रयत्नशील चित्त से, एकाग्र होकर,

पुरुषार्थपूर्वक ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

By meditation, a monk certainly attains both kinds of causes of liberation—empirical and real. Therefore, one who aspires for liberation should practise meditation with a diligent and focused mind, making sustained effort.

मा मुज्झह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।

थिरमिच्छहि जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मोह राग द्वेष मत कर, इष्ट अनिष्ट पदार्थ।

विविध ध्यान की सिद्धि हो, चित्त स्थिर हो पार्थ ॥४८॥

यदि तुम चित्त को स्थिर रखना चाहते हो तो, इष्ट और अनिष्ट पदा
र्थों के विषय में मोह मत करो, राग मत करो और द्वेष मत करो। य
ही विविध प्रकार के ध्यान की सिद्धि का उपाय है।

Do not be deluded, do not become attached, and do not feel aversion towards agreeable or disagreeable objects. If you wish to keep the mind steady, this is the means for attaining proficiency in various kinds of meditation.

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवहज्झाएह।

परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरुवएसेण ॥४९॥

पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो व एक।

गुरु-उपदिष्ट मन्त्र का, करो ध्यान जप नेक ॥४९॥

पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक— इस क्रम से उतने-उतने अक्षरों वाले परमेष्ठी-वाचक मंत्रों का जप और ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार गुरु द्वारा उपदिष्ट अन्य मंत्रों का भी जप और ध्यान करना चाहिए।

Chant and meditate upon the mantras denoting the Pañca-Parameṣṭhī, having 35, 16, 6, 5, 4, 2, and 1 syllables, in that order. Likewise, practise the chanting and meditation of other mantras taught by the Guru.

णट्ठ चदुघाइकम्मो, दंसण सुह णाण वीरिय मईओ।
सुदहेत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचितिंज्जो ॥५०॥

दर्शन ज्ञान सुख बल अनन्त, नष्ट घातिया चार।
आत्मा स्थित शुद्ध अवस्था, प्रभु अरिहन्त विचार ॥५०॥

चारों घातिया कर्मों से रहित, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य से युक्त, शुद्ध अवस्था में स्थित आत्मा— ऐसे अरिहन्त परमेष्ठी ध्यान के योग्य हैं।

One whose four destructive (ghātiyā) karmas are destroyed, who is endowed with infinite perception, infinite knowledge, infinite bliss, and infinite energy, whose soul abides in a pure state— such an Arihant (worthy one) is fit to be contemplated upon.

णट्ठट्ठ कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

नष्ट शरीर व आठ करम, ज्ञाता लोक-अलोक।
ध्यान अन्तिम आकार का, सिद्ध परमेष्ठी लोक ॥५१॥

जिनके आठों कर्म और शरीर नष्ट हो चुके हैं, जो लोक और अलोक के ज्ञाता–द्रष्टा हैं,
जिस शरीर से मोक्ष प्राप्त हुआ था उसी पुरुषाकार में स्थित आत्मा— वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।
लोक के शिखर पर स्थित सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करो।

One whose eight karmas and physical body are destroyed, who is the knower and seer of the universe and the non-universe, whose soul retains the form corresponding to the last body in which liberation was attained— that soul is a Siddha (liberated being). Meditate upon the Siddha dwelling at the summit of the universe.

दंसणणाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे।

अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

दर्शन ज्ञान प्रधानता, चारित्र तप बल सार।

स्व-पर को प्रवृत्त करे, ध्यान योग्य आचार्य ॥५२॥

दर्शन और ज्ञान की प्रधानता सहित, वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तप–आचार में जो मुनि स्वयं को और दूसरों को प्रवृत्त करते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी ध्यान के योग्य हैं।

One who gives primacy to right perception and right knowledge, and who engages himself as well as others in energy, right conduct, and excellent austerities— such a monk is an Ācārya (spiritual preceptor) worthy of contemplation.

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो।

सो उवज्झाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

रत्नत्रय से युक्त सदा, धर्म कथन व्यवहार।

मुनियों में श्रेष्ठ मुनि, उपाध्याय नमस्कार ॥५३॥

जो रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र) से युक्त है, और सदैव धर्मोपदेश देने में निरत रहता है, वही आत्मा मुनियों में श्रेष्ठ उपाध्याय परमेष्ठी है– ऐसे उपाध्याय को नमस्कार हो।

One who is endowed with the three jewels and is constantly engaged in imparting the teaching of Dharma, that soul is the Upādhyāya, the best among monks. Salutations to such an Upādhyāya.

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।

साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

दर्शन ज्ञान युक्त चरित्र, मोक्ष मार्ग साकार।

नित्य साधना शुद्ध चरित्र, साधु मुनि नमस्कार ॥५४॥

दर्शन और ज्ञान से युक्त जो मोक्ष का मार्गरूप चारित्र है, उस नि
त्य शुद्ध चारित्र को जो मुनि साधते हैं—
वे ही साधु परमेष्ठी हैं; ऐसे साधु मुनि को नमस्कार है।

One who practises the path of liberation in the form of conduct, integrated with right perception and right knowledge, and who constantly cultivates pure conduct, is a Sādhu (monk). Salutations to such a monk.

जं किंचिवि चिंततो णिरीरवित्तो हवे जदा साहू।

लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥५५॥

जब साधु की एकाग्रता, विषय चिन्तन होय।

हो इच्छारहित अवस्था, निश्चय ध्यान होय॥५५॥

जब साधु एकाग्रता (एकत्व) को प्राप्त कर लेता है और किसी भी विषय का चिन्तन करते हुए भी इच्छारहित हो जाता है, तब उस अवस्था को उस साधु का निश्चय ध्यान कहा गया है।

When a monk, having attained oneness and deep concentration, contemplates upon anything while remaining free from desire, that state is called real (niścaya) meditation of that monk.

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

चेष्टा, चिन्तन, वचन नहीं, आत्मा स्थिर आन।

आत्मा स्व में लीन हो, परम निश्चय ध्यान ॥५६॥

कोई भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, और किसी भी विषय का चिन्तन मत करो—
जिससे आत्मा स्थिर हो सके। जब आत्मा आत्मा में ही रत हो जाती है, वही अवस्था परम (उत्कृष्ट) ध्यान कहलाती है।

Do not engage in bodily activity, do not speak, and do not think of anything— so that the soul becomes steady. When the soul is absorbed in itself alone, that state itself is called supreme meditation.

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तप श्रुत व्रत की धारणा, ध्यान रथ को संभाल।
तप श्रुत व्रत लीन रहो, परम ध्यान सम्हाल ॥५७॥

तप, श्रुत और व्रत—इन तीनों को धारण करने वाली चेतना ध्यान-रूपी रथ की धुरा को संभालने में समर्थ होती है। इसलिए उस पर म ध्यान की सिद्धि के लिए सदैव तप, श्रुत और व्रत—
इन तीनों में लीन रहो।

Because the consciousness that upholds austerity, scriptural study, and vows becomes capable of bearing the axle of the chariot of meditation, therefore, for attaining that supreme meditation, one should always remain devoted to austerity, study, and vows.

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंद मुणिणा भणियं जं ॥५८॥

अल्पश्रुत नेमिचंद मुनि, द्रव्यसंग्रह का बखान।
गुरुजन त्रुटि को शुद्ध करे, विनम्र विनय पहचान ॥५८॥

यह द्रव्यसंग्रह—
जो मुझ अल्पश्रुतधारी नेमिचन्द्र मुनि द्वारा कहा गया है—
उसमें यदि कोई दोषों का संचय हो, तो श्रुत से परिपूर्ण, प्रधान मु
नि गुरुजन इसे शुद्ध करें— ऐसी विनम्र प्रार्थना है।

This *Dravya-saṅgraha*, which has been composed by me, Nemichandra Muni, a bearer of only limited scriptural knowledge— if it contains any accumulation of faults, may it be purified and corrected by learned monks, rich in scriptural wisdom.

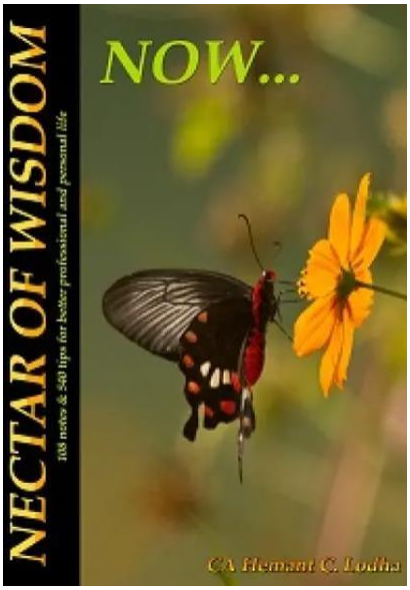

NECTAR OF WISDOM
NOW...
CA Hemant C. Lodha

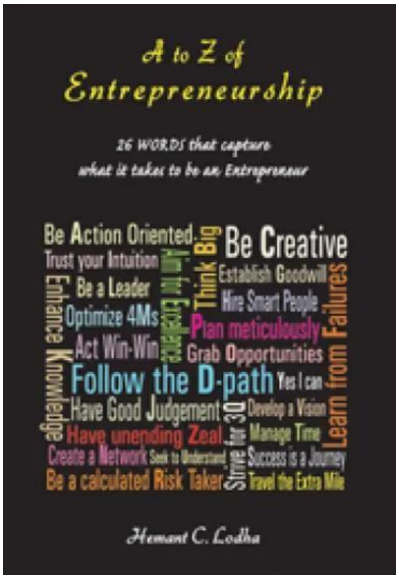

A to Z of Entrepreneurship
26 WORDS that capture what it takes to be an Entrepreneur
Be Action Oriented
Be Creative
Think Big
Trust your Intuition
Establish Goodwill
Be a Leader
Hire Smart People
Optimize 4Ms
Plan meticulously
Act Win-Win
Grab Opportunities
Enhance Knowledge
Follow the D-path
Yes I can
Learn from Failures
Have Good Judgement
Develop a Vision
Have unending Zeal
Manage Time
Create a Network
Success is a Journey
Be a calculated Risk Taker
Travel the Extra Mile
Hemant C. Lodha

Words of Wisdom
WOW
WORDS OF WISDOM
Hemant C. Lodha

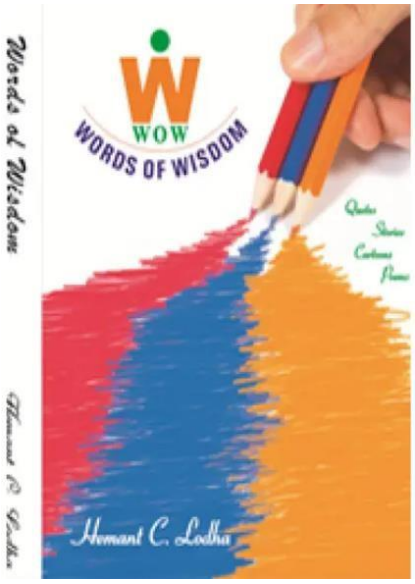

अष्टावक्र महागीता
रूप-कविता
संकल्पना व लेखन
• हेमंत सी. लोढ़ा

श्रीमद्भगवद्गीता
रूप-कविता

कही अनकही
(काव्य)
हेमंत लोढ़ा

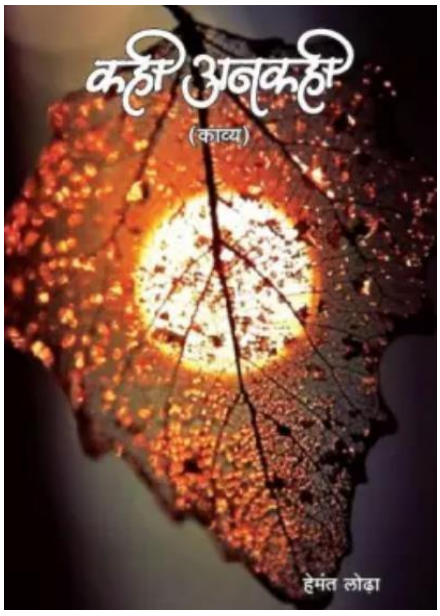

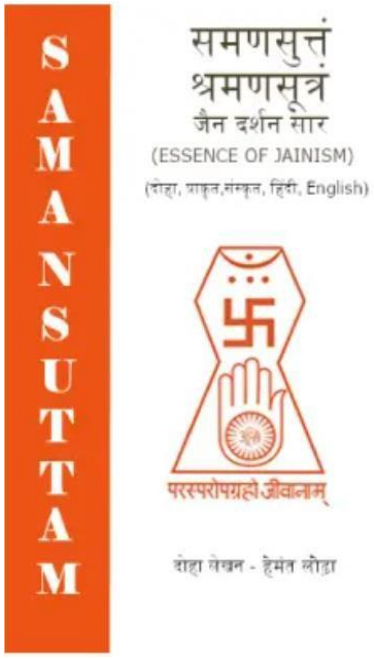

SAMANSUTTAM
समणसुत्तं
श्रमणसूत्र
जैन दर्शन सार
(ESSENCE OF JAINISM)
(दोहा, प्राकृत,संस्कृत, हिंदी, English)
परस्परोपग्रहो जीवानाम्
दोहा लेखन - हेमंत लोढ़ा

A 2 Z of LEADERSHIP
A Guide To What it takes to Be an effective Leader
AUTHOR - HEMANT LODHA
CO-AUTHOR - SWETA MOR GUPTA

NECTOR OF WISDOM 2.0
NOW 2.0...
Hemant Lodha

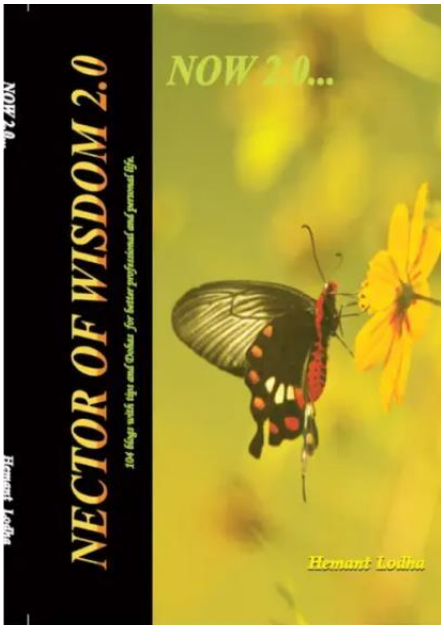

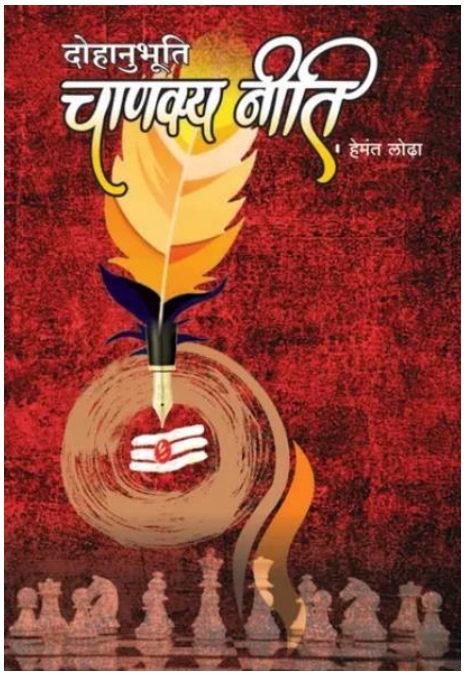
दोहानुभूति
चाणक्य नीति
हेमंत लोढ़ा

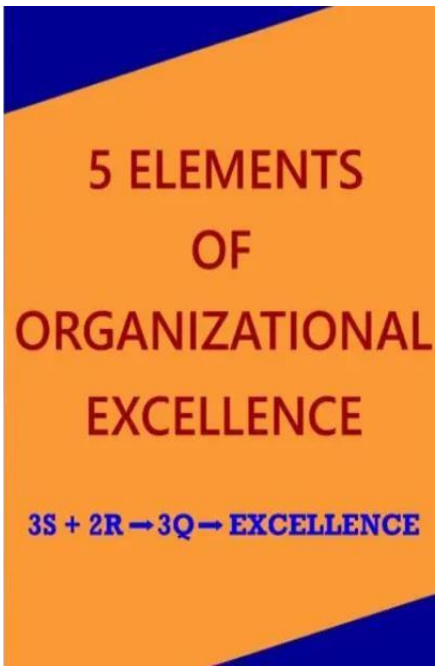
5 ELEMENTS
OF
ORGANIZATIONAL
EXCELLENCE
3S + 2R → 3Q → EXCELLENCE

RATNAKARAND SHRAVAKACHAR
आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित
रत्नकरण्ड श्रावकाचार
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
महिमा
दोहा लेखन
जैन हेमन्त लोढ़ा

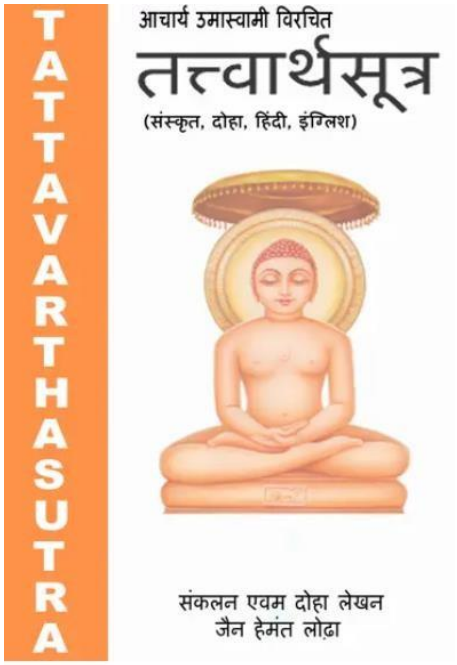
TATTAVARTHASUTRA
आचार्य उमास्वामी विरचित
तत्त्वार्थसूत्र
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
संकलन एवम दोहा लेखन
जैन हेमंत लोढ़ा

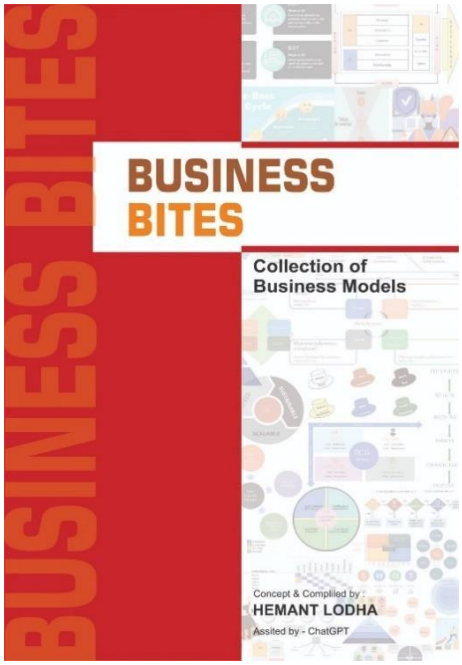
BUSINESS BITES
BUSINESS
BITES
Collection of
Business Models
Concept & Compiled by :
HEMANT LODHA
Assited by - ChatGPT

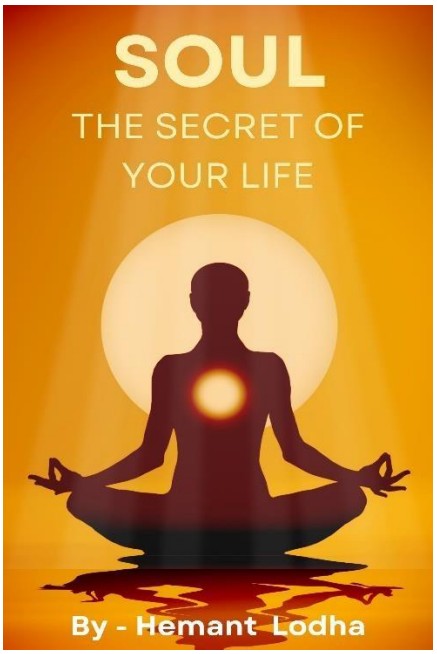
SOUL
THE SECRET OF
YOUR LIFE
By - Hemant Lodha

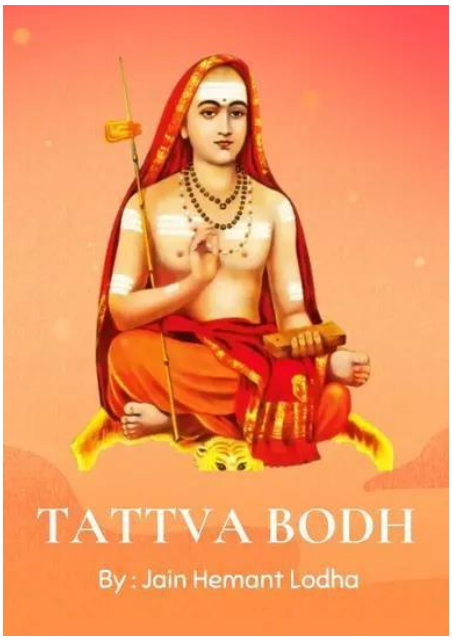
TATTVA BODH
By : Jain Hemant Lodha

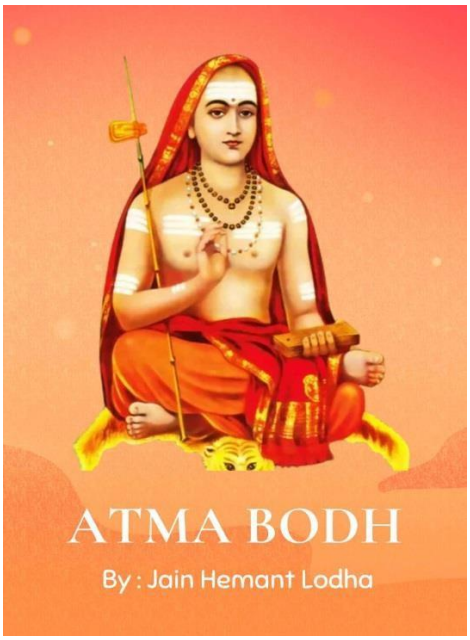
ATMA BODH
By : Jain Hemant Lodha

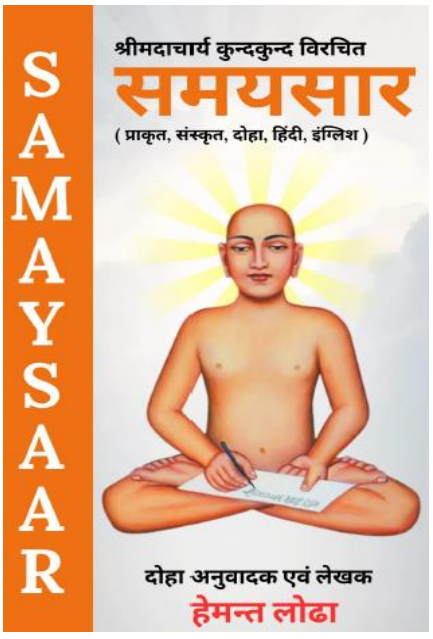
SAMAYSAR
श्रीमदाचार्य कुन्दकुन्द विरचित
समयसार
(प्राकृत, संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
दोहा अनुवादक एवं लेखक
हेमन्त लोढ़ा

CA Hemant Lodha (Jain)

Mr. Hemant Lodha, a chartered accountant by profession is an avid reader whose literary interests include philosophy, spirituality, relationship building, leadership skills & management skills. Born in Jodhpur, to a respected family of limited means, he has been all over the globe before settling in Nagpur in 2002.

He has authored many books such as 'Words of Wisdom', 'Nectar of Wisdom', 'Shrimad Bhagwat Geeta Roopkavita', 'Ashtavakra Mahageeta Roopkavita', 'Kahi Ankahi', 'Samansuttam', 'Chankya Niti' 'A to Z Entrepreneurship' 'A to Z of Leadership' etc.

Being socially active, he is associated with several organizations and has founded "Helplink Charitable Trust" with a motto to LINK THE NOBLE AND THE NEEDY, mainly working in the field of education for deprived children.

He is presently working as a Director of SMS Limited.

He can be easily reached at www.hemantlodha.com